## पांडे राजमल्ल जी और उनकी 'बालबोधिनी-टीका'–

जयपुर के निकट स्थित 'विराट' नगर में मुगल बाहशाह अकबर के शासनकाल में ये हुये, और शाहजहाँ के काल तक रहे। इन्हें इनके निकट-उत्तरकालवर्ती कविवर पं. बनारसीदास जी ने 'पांडे' विरुद से ससम्मान उल्लिखित किया है– "**पांडे राजमल्ल जिनधर्मी, नाटक-समयसार के मर्मी।**"

संभवतः इन्हें आज के जातिवाचक-शब्द के रूप में 'पांडे' विरुद का प्रयोग नहीं किया गया है, बल्कि 'पंडित' या 'विद्वान्' के रूप में इसका प्रयोग सादर बहुमान व्यक्त करने के लिये कविवर पं. बनारसीदास जी ने वहाँ किया है, जो कि इनके इतिवृत्त से भी ज्ञापित होता है।

## पांडे राजमल्ल जी का इतिवृत्त–

बादशाह अकबर के काल मे विराटनगर में क्षेमकीर्ति नामक भट्टारक के आम्नाय में 'भारु' नामक वैश्य/व्यापारी निवास करते थे। इन्हीं भारु वैश्य के चार पुत्र हुये– 1.दूदा, 2. ठाकुर, 3. जागसी और 4. तिलोक। इनमें से दूदा के तीन पुत्र हुये– 1. न्यौता, 2. भोल्हा,और 3. फामन।

इनमें से 'फामन' नामक पुत्र किसी कार्यवश विराटनगर आया और वहाँ पर उसने हेमचन्द्राचार्य की आम्नाय के 'ताल्हू' नामक विद्वान् से जैनधर्म की शिक्षा प्राप्त की। फिर वह 'ताल्हू' नामक वैश्यपुत्र कविराज पांडे राजमल्ल जी के पास आया और उसी ताल्हू के अनुरोध पर राजमल्ल जी ने 'लाटीसंहिता' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। उसके बाद पांडे राजमल्ल जी ने आचार्य कुन्दकुन्द देव द्वारा विरचित 'समयसार' ग्रन्थ पर आचार्य अमृतचंद्र सूरि द्वारा विरचित 'आत्मख्याति' नामक टीका में आगत 'कलश' संज्ञा से विख्यात पद्यों पर 'समयसार-कलश टीका' नामक विश्रुत व्याख्या-ग्रन्थ लिखा।

इनके अतिरिक्त इन्होंने 'पंचास्तिकाय-टीका', 'पंचाध्यायी', 'जंबूस्वामीचरित्र', 'पिंगल-छन्दःशास्त्र' एवं 'अध्यात्म-कमल-मार्त्तण्ड' नामक ग्रन्थों की रचना भी की है।

इनका समय विक्रम-संवत् 1632-1650 यानि विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी माना जाता है।

इनके विषय में प्रायः यह आक्षेपात्मक-आशंका व्यक्त की जाती है कि "ये तो काष्ठासंघी थे। तो इन्हें कुन्दकुन्द के आम्नाय का कैसे माना जा सकता है?" किन्तु यह आशंका महत्त्वहीन है; क्योंकि इनके काष्ठासंघी होने का कोई प्रमाण नहीं है।

वस्तुस्थिति यह है कि इनके समकालीन भट्टारक क्षेमकीर्ति 'काष्ठासंघ' के 'माथुरगच्छ' के 'पुष्करगण' के

भट्टारकों की आम्नाय में हुये थे। यद्यपि यह आम्नाय आचार्य कुन्दकुन्द देव के आम्नाय के अनुकूल नहीं है ; तथापि वे भट्टारक क्षेमकीर्ति आचार्य कुन्दकुन्द देव के आध्यात्मिक-तत्त्वज्ञान से बहुत प्रभावित थे और उन्होंने विद्वद्वर्य पांडे राजमल्ल जी की जैनदर्शन की तलस्पर्शी-मनीषा को परखकर उनसे आचार्य कुन्दकुन्द देव के ग्रन्थों पर विशद-व्याख्यात्मक-रचनायें लोकभाषा में लिखने की प्रेरणा दी थी, ताकि जो आम जैनी-जन संस्कृत और प्राकृत-भाषाओं के अभ्यस्त नहीं हैं, वे भी आचार्य कुन्दकुन्द देव के परमागमों का रहस्य समझ सकें।

इस उल्लेख से भट्टारक क्षेमकीर्ति के काष्ठासंघ की आम्नाय का होते हुए भी आचार्य कुन्दकुन्द देव की आम्नाय से अतिप्रभावित होने का प्रमाण तो मिलता है, किन्तु पांडे राजमल्ल जी के काष्ठासंघी होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

यह एक संयोग मात्र है कि ये दोनों न केवल समकालीन थे, बल्कि भट्टारक क्षेमकीर्ति ने पांडे राजमल्ल जी को कुन्दकुन्द आचार्य देव के परमागमों की लोकभाषा में व्याख्या करने का परामर्श उनकी प्रतिभा और क्षमता को परखकर दिया था।

इस विवरण से तो यह सिद्ध होता है कि पांडे राजमल्ल जी जैन-तत्त्वज्ञान के मर्मज्ञ मनीषी-साधक थे और उन्होंने अपने ज्ञान व साधना से समकालीन भिन्न-आम्नायवाले भट्टारकों को भी प्रभावित करके आचार्य कुन्दकुन्द देव की मूल-आम्नाय से अनुप्राणित कर लिया था।

अतः 'समयसार कलश-टीका' के यशस्वी-प्रणेता तत्त्वज्ञान-मनीषी कविवर पांडे राजमल्ल जी के काष्ठासंघ की आम्नाय के अनुयायी होने की बात निरर्थक एवं निर्मूल है।

## पांडे राजमल्ल जी का वैदुष्य–

'समयसार कलश-टीका' के प्रणेता एवं अन्य कई कलजयी-ग्रन्थों के रचयिता पांडे राजमल्ल जी व्याकरण, छंदशास्त्र, जैनसिद्धान्त, स्याद्वाद और आध्यात्मिक-तत्त्वज्ञान के अधिकारी मनीषी थे; जिनकी प्रतिभा का लोहा प्रायः सभी इनके समकालीन व उत्तरकालवर्ती-मनीषियों ने माना है। 'लाटीसंहिता' नामक जैन-श्रावक आचार के ग्रन्थ में उन्होंने स्वयं को ''स्याद्वादानवद्य-गद्य-पद्य-विद्या-विशारद..'' कहा है।

आधुनिक विद्वान् पं. परमानंद शास्त्री जी ने पांडे राजमल्ल जी के वैदुष्य एवं व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुये लिखा है कि ''पांडे राजमल्ल जी की कलश-टीका से अनेक लोग अध्यात्म-रस का पान करने में समर्थ हो सके हैं। आपका व्यक्तित्व प्रभावशाली था और उनके चित्त में जनकल्याण की भावना सदा जागृत रहती थी। खासकर राजस्थान के 'मारवाड़' और 'मेवाड़'-प्रांत में विहार करके जनकल्याण करते हुये यश और प्रतिष्ठा प्राप्त की। उनके विशुद्ध-परिणाम और सर्वोपकारिणी-बुद्धि– इन दोनों गुणों का एकत्र सम्मेलन उनके बौद्धिक-जीवन की विशेषता थी। उनकी 'अध्यात्म कमल-मार्त्तण्ड' और 'पंचाध्यायी' कृतियाँ उनके अध्यात्मानुभव और स्याद्वाद-सरणी की निर्देशक हैं। वे जहाँ जाते, वहाँ उनका स्वागत होता था।''

## बालबोधिनी-टीका का वैशिष्ट्य–

इस टीका का नामकरण लेखक ने 'बालबोधिनी-टीका' किया है। और संभवतः इसे चरितार्थ करने के लिए ही उन्होंने 'पद-व्याख्या-शैली' को इस टीका में अपनाया है।

यद्यपि यह टीका 'समयसार' ग्रंथ पर आचार्य अमृतचंद्र सूरि कृत 'आत्मख्याति' नामक टीका में आगत-पद्यों पर है, जिन्हें 'कलश' की संज्ञा दी गयी है। किन्तु इन कलशों को लगभग स्वतंत्र-कृति मानकर यह टीका लिखी गयी है, न कि सम्पूर्ण 'आत्मख्याति' टीका पर। इससे स्पष्ट है कि 'आत्मख्याति' नामक इस टीका में आगत ये कलश इस टीका के अंग होते हुये भी पांडे राजमल्ल जी ने इन कलशों को लगभग स्वतंत्र व मौलिक-रचना
'बालबोधिनी-टीका' लिखी है।

इसका नामकरण अवश्य 'बालबोधिनी' है; किन्तु ऐसा नहीं है कि यह मात्र बालबोधिनी-स्तर की ही टीका हो। यह कविवर पांडे राजमल्ल जी के वैदुष्य के प्रतिमानों के अनुरूप भरपूर प्रगल्भ-टीका है। बस, इसकी प्रस्तुतीकरण की भाषा-शैली ही सरल होने से इसकी 'बालबोधिनी' संज्ञा अन्वर्थक सिद्ध होती है।

इस टीका के विषय में बीसवीं शताब्दी के मूर्धन्य जैन-मनीषी पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य के विचार मननीय हैं– " यह टीका मोक्षमार्ग के अनुरूप अपने स्वरूप को स्वयं प्रकाशित करती है, इसलिये तो प्रमाण है ही। साथ ही वह जिनागम, गुरु-उपदेश, युक्ति और स्वानुभव-प्रत्यक्ष को प्रमाण कर लिखी गयी है, इसलिये भी प्रमाण है। क्योंकि जो स्वरूप से प्रमाण न हो, उसमें परतः प्रामाणिकता नहीं आती है– ऐसा न्याय है। यद्यपि यह ढूँढारी-भाषा में लिखी गयी है, फिर भी गद्यकाव्य-सम्बन्धी शैली और पद-लालित्य आदि सब विशेषताओं से ओतप्रोत होने के कारण यह भव्यजनों के चित्त को आह्लाद उत्पन्न करने में समर्थ है। वस्तुतः इसकी रचनाशैली और पद-लालित्य की अपनी विशेषता है।"

वे आगे इस टीका की विशेषता को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि कविवर ने प्रत्येक शब्द का अर्थ प्रायः शब्दानुगामिनी-पद्धति से न करके भावानुगामिनी-पद्धति से किया है।... इसप्रकार यह टीका प्रत्येक कलश के मात्र शब्दानुगामी-अर्थ को स्पष्ट करनेवाली टीका न होकर उसके रहस्य को प्रकाशित करनेवाली भावप्रवण-टीका है।"

आचार्य कुन्दकुन्द देव और आचार्य अमृतचंद्र सूरि– दोनों के वचनों को यहाँ आधार बनाकर पांडे राजमल्ल जी ने अपनी 'बालबोधिनी-टीका' में, जिसे आज 'समयसार-कलश-टीका' के नाम से भी जाना जाता है, में युगधर्मिता के अनुरूप भाषा-शैली एवं प्रतिपाद्य– तीनों में कई विशिष्ट-प्रयोग किये हैं। ऐसे प्रयोगों में कुछ बानगियाँ द्रष्टव्य हैं–